विकासवाद (Theory of Evolution) (सांख्य दर्शन)

TDC-I & Sub.

डॉ. विजय कुमार
दर्शनशास्त्र विभाग
एल. एस. कॉलेज, मुजफ्फरपुर

सांख्य दर्शन के अनुसार प्रकृति और पुरुष के संयोग से जगत् की उत्पत्ति होती है। प्रकृति-पुरुष जब एक-दूसरे के संसर्ग में आते हैं तह एक के बाद दूसरे तत्त्व उत्पन्न होने लगते हैं और बे बढ़ते-बढ़ते विश्व का रूप ले लेते हैं। यह एक क्रमिक विकास होता है इसलिए इसे मान्यता देने वाले सिद्धान्त को विकासवाद कहते हैं। यदि इसे विकारवाद भी कहें कोई अनुचित नहीं होगा। क्योंकि प्रकृति में जो कुछ है वह प्रकृति का विकार ही है।

प्रकृति-पुरुष संयोग

प्रकृति-पुरुष का संयोग न हो तो किसी भी वस्तु की उत्पत्ति न हो। अलग-अलग रहकर प्रकृति और पुरुष में से कोई भी कुछ उत्पन्न नहीं कर सकता। यहाँ जिज्ञासा होती है कि प्रकृति जड़ होती है तथा पुरुष में चेतना होती फिर भी वह निष्क्रिय होता है। दोनों के धर्म भिन्न हैं, ऐसी दशा में दोनों का किसी कार्य में सहभागी बनना कैसे संभव है। इसके सम्बन्ध में सांख्य विचारकों का मत है कि प्रकृति और पुरुष उस प्रकार से एक-दूसरे की सहायता करते हैं जिस प्रकार अंधा और लंगड़ा एक-दूसरे की सहायता करते हैं। यदि दोनों जंगल में हैं तो अंधा के कंधे पर लंगड़ा बैठ जाता है, अंधा चलता है और लंगड़ा उसे मार्ग का ज्ञान कराता है। इस तरह दोनों जंगल से निकल जाते हैं। इसी तरह प्रकृति और पुरुष विपरीत धर्म वाले होते हुए भी एक-दूसरे की सहायता करते हैं। लेकिन दोनों इस तरह सम्बन्धित नहीं होते जैसे दो भौतिक द्रव्य आपस में मिलते हैं। पुरुष प्रकृति को उसी तरह प्रभावित करती है जिस तरह कोई विचार शरीर को प्रभावित करता है। संयोग होने से प्रकृति के भोग्या रूप की सार्थकता सिद्ध होती है। इसलिए प्रकृति भोग्या है। अत: भोक्ता यानी पुरुष के संयोग होने से वह जानी जाती है। पुरुष प्रकृति से मिलकर अपने आप को जानता है जिसके फलस्वरूप उसे कैवल्य की प्राप्ति होती है।

प्रकृति त्रिगुणात्मिका है। उसमें सत्व, रज और तम तीन गुण पाए जाते हैं। सृष्टि से पूर्व और प्रलय के समय प्रकृति के तीनों गुण साम्यावस्था में रहते हैं कोई कम या अधिक नहीं होता है। जब प्रकृति और पुरुष का

संयोग होता है तब इन गुणों में हलचल मच जाती है। प्रत्येक गुण अन्य दो गुणों को दबाकर आगे बढ़ना चाहता है। इसे ही सांख्य दर्शन गुण-क्षोभ कहता है। गुण-क्षोभ की अवस्था में ही संसार की नाना वस्तुओं की उत्पत्ति होती है। सांख्य दर्शन ने विकास के अन्तर्गत २५ तत्त्वों को स्वीकार किया है-

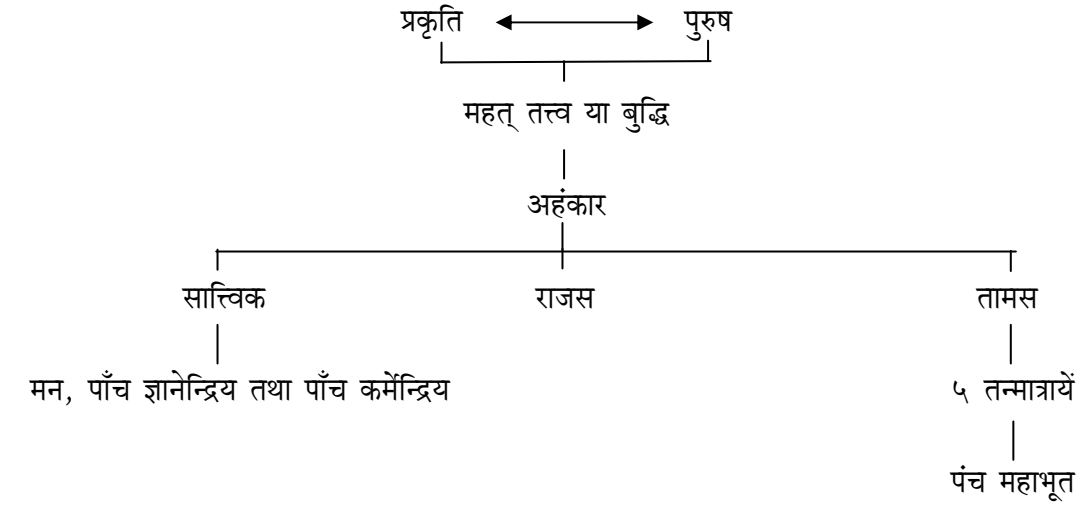

महत् तत्त्व या बुद्धि- प्रकृति और पुरुष के संयोग से सर्वप्रथम महत् तत्त्व उत्पन्न होता है जिसे बुद्धि कहते हैं। बुद्धि का मतलब होता है निश्चयात्मक ज्ञान। यह जगत् का बीज रूप है। 'अध्यवसाय' इसका लक्षण है। इसी के कारण ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय प्रतिष्ठित होता है। यदि बुद्धि नहीं होती तो किसी में भी किसी प्रकार का ज्ञान नहीं होता। यह न केवल अपने बल्कि अपने विषयों को भी प्रकाशित करती है। सात्त्विक गुण की अधिकता के कारण इसमें धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य उत्पन्न होते हैं तथा तमो गुण की अधिकता के कारण अधर्म, अज्ञान, आसक्ति आदि उत्पन्न होते हैं। रजो गुण इन दोनों गुणों को शक्ति प्रदान करती है। इससे किसी प्रकार की उत्पत्ति नहीं होती। बुद्धि जड़ है क्योंकि यह प्रकृति का विकार है किन्तु पुरुष के निकट आने पर यह उससे प्रभावित होकर चेतन हो जाती है। बुद्धि का व्यापार पुरुष के लिए होता है और इन्द्रियाँ तथा मन के कार्य बुद्धि के लिए होते हैं। इस तरह बुद्धि के माध्यम से ही पुरुष सुख-दुःख का भोक्ता बनता है। बुद्धि के कारण ही सुख-दुःख के बोध होते हैं।

अहंकार- यह प्रकाति का दूसरा विकार है। व्यक्ति में जो अहम् भाव है वही अहंकार है। मैं और मेरा का भाव अहंकार है। इसके कारण व्यक्ति भ्रम में पड़ता है। मन तथा इन्द्रियों के द्वारा प्राप्त अनुभव जब अहंकार के सामने आते हैं तब वह अपने को ही सबका कर्ता मानता है और सब मेरे लिए हैं। ऐसा मानता है। अहंकार के वशीभूत होकर ही व्यक्ति किसी कार्य में प्रवृत्ति होता है।

अहंकार के तीन रूप माने गए हैं-

१. सात्त्विक जिसे वैकारिक भी कहते हैं। इसमें सात्त्विक गुण की अधिकता होती है।

२. राजस अथवा तैजस जिसमें रजोगुण की प्रबलता रहती है।

३. तामस अथवा भूतादि जिसमें तमोगुण अधिक होता है।

सात्त्विक अहंकार से पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा एक मन उत्पन्न होते हैं। तामस अहंकार से पंच तंमात्रायें उत्पन्न होती हैं। ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच होती हैं- नेत्रेन्द्रिय, श्रवणेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसेन्द्रिय और त्वगिन्द्रय। इन इन्द्रियों के माध्यम से क्रमश: रूप, शब्द, गन्ध, रस एवं स्पर्श के बोध होते हैं। कर्मेन्द्रियाँ भी पाँच हैं। इन सब की जानकारी उन अंगों से होती है जिनमें ये स्थित होती हैं, जैसे मुख, हाथ, पैर, मलद्वार और जननेन्द्रिय। इनके कार्य क्रमश: बोलना, पकड़ना, चलना, मलत्याग और संतान उत्पन्न करना।

मन को ग्यारहवीं इन्द्रिय माना गया है। इसका सम्बन्ध ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों सी होता है। यह इन्द्रियों को कार्य के लिए प्रेरित करता है। चूँकि मन सावयव होता है। एक ही समय में यह विभिन्न इन्द्रियों से सम्बन्ध रखता है। इन्द्रियों के द्वारा वस्तु के विषय में जो भी जानकारी मिलती है वह निर्विकल्पक होती है जिसे मन सविकल्पक बनाती है। जैसे दूर हम कुछ देखते हैं जो अस्पष्ट होता है, हम समझ नहीं पाते हैं कि क्या है? यह निर्विकल्पक स्थिति है। जब मन तर्क-वितर्क करके यह निश्चित करता है कि जो कुछ हमें दिखाई दे रहा है वह आदमी है या टूटे हुए वृक्ष की छाया, तब सविकल्पक बोध होता है। वस्तु को अनुकूल या प्रतिकूल देखकर अहंकार अपना व्यापार करता है, तब बुद्धि उसके सम्बन्ध में निश्चयात्मकता व्यक्त करती है और फिर वह पुरुष के समक्ष उपस्थित होती है। बुद्धि अहंकार तथा मन की अन्त:करण तथा पाँच ज्ञानेन्द्रियों और पाँच कर्मेन्द्रियों को बाह्य इन्द्रियाँ कहा गया है। ये सब मिलाकर तेरह होते हैं। इसलिए इन्हें त्रयोदशकरण भी कहते हैं।

तन्मात्राएँ- तन्मात्राओं की उत्पत्ति तामस अहंकार से होती है। ये सूक्ष्म तत्त्व है जिनका हमें प्रत्यक्ष बोध नहीं होता, हम सिर्फ़ अनुमान करते हैं। तन्मात्राओं के संयोग से पंचभूतों की उत्पत्ति होती है।

१. शब्द तन्मात्रा से आकाश उत्पन्न होता है।

२. शब्द तन्मात्रा के साथ स्पर्शतन्मात्रा के मिलने से वायु का उदय होता है।

३. जब शब्द, स्पर्श और रूप तन्मात्राओं का संयोग होता है तब अग्नि की उत्पत्ति होती है।

४. शब्द, स्पर्श, रूप तथा रस तन्मात्राओं के मिलने से जल की उत्पत्ति होती है।

५. शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध तन्मात्राओं के मिलने से पृथ्वी की उत्पत्ति होती है।

इन पंचभूतों के विशेष गुण क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध होते हैं।

सांख्य दर्शन ने विकास के दो सर्ग माने हैं- प्रत्यय सर्ग और तन्मात्र सर्ग।

प्रत्यय सर्ग चूँकि मानसिक व्यापारों से सम्बन्धित होता है। इसलिए उसे भाव सर्ग भी कहते हैं। बुद्धि, अहंकार एवं इन्द्रियों तक के विकास प्रत्यय सर्ग के अन्तर्गत आते हैं और तन्मात्राओं से लेकर आगे तक के विकास प्रत्यय सर्ग के अन्तर्गत आते हैं।

विकास के इस सिद्धान्त में सांख्य दर्शन ने कुल पच्चीस तत्त्वों को प्रस्तुत किया है-

प्रकृति + बुद्धि + अहंकार + मन + पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ + पाँच कर्मेन्द्रियाँ + पांच तन्मात्राएं + पाँच महाभूत = २४ और एक पुरुष। इस प्रकार पच्चीस तत्त्वों का मिला-जुला रूप विकासवाद है।

●